IJAER/Nov-Dec 2022/Volume-11/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

"अथर्ववेद में पुर–वास्तु विषयक अवधारणा"

(1) अर्चना भार्गव
सह आचार्य, संस्कृत विभाग
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राज. महाविद्यालय, अजमेर।
(शोधार्थी, म.द.स.वि.वि., अजमेर)

(2) डॉ. आशुतोष पारीक
सह–आचार्य, संस्कृत विभाग
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राज. महाविद्यालय, अजमेर।

शोध–सारांश –

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "पुर से अभिप्राय किले से है जिसे वेदकालीन राजाओं ने अपने निवास–स्थान को शत्रुओं से बचाने के लिए बना रखा था। बड़े–बड़े गाँवों में किलाबन्दी की जाती थी। पुर बहुत विशाल हुआ करते थे क्योंकि ऋग्वेद के एक मन्त्र (ऋग्वेद 1/189/2) में इसे विस्तृत तथा उर्वी (विशाल) बताया गया है। ये पुर अश्मन्मयी तथा आयसी होते थे। वैदिक आर्यों तथा दासों ने आत्मरक्षा के लिए इन किलों का निर्माण पत्थर आदि कड़े तथा टिकाऊ साधनों से किया था।" वस्तुतः प्राजापत्य देव और असुर दोनों ही वास्तु–विद्या में निपुण थे। उनके द्वारा भिन्न–भिन्न प्रयोजनों को लक्ष्य कर भिन्न–भिन्न सामग्रियों की सहायता से विविध स्थानों पर विभिन्न पुरों का निर्माण किया गया। अतः निर्मिति के अनुरूप पुरों के विभिन्न स्वरूप वैदिक तथा परवर्ती वाङ्मय में दृष्टिगोचर होते हैं जिन पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत शोध–पत्र में किया गया है।

कूट शब्द – प्राजापत्य, शर्म, वर्म, स्वर्ण नगरी, जीवपुर, ब्रह्मपुर, शारदी, परिखा, त्रिपुर।

मानव सभ्यता के प्रारम्भिक युग, वैदिक युग में ही लोगों ने किसी भी प्रकार की आपदा से सुरक्षा के उपायों पर चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था। इस चिन्तन–क्रम में अपने आवास–स्थानों के आस–पास अथवा ग्राम के मध्य में पुर–निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गयी, किन्तु इन पुरों के अन्दर किसी प्रकार की बस्ती का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः इन पुरों का निर्माण बाढ़ तथा बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा के निमित्त होता था। इन्हें आवास के लिए स्थायी रूप से प्रयुक्त सुरक्षित स्थान नहीं माना गया। ये आक्रमणों से बचने के स्थान मात्र थे जो खाई, शङ्कु आदि से सुरक्षित थे।[1] प्रारम्भ में कड़ी मिट्टी, तदनन्तर पाषाण आदि की प्राचीरों से निर्मित प्राकार मात्र थे। इस प्रकार शत्रु से रक्षा के लिए दुर्ग (पुर) के परकोटे पत्थरों अथवा पत्थरों की दीवारों के बने हुए होते थे जिससे शत्रु सरलता से उसे तोड़ न सके।

अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर 'पुर' शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। यहाँ 'पुर' शब्द का ग्रहण दुर्ग अथवा किले के अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद में पुर को सुख (शर्म) तथा सुरक्षा (वर्म) का स्थान कहा गया है। वस्तुतः पुर सुख और आश्रय प्रदान करने वाले माने गये हैं। यथा –

"मित्रः पृथिव्योदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।

तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु।।[2]"

अर्थात् मित्रभूत अग्नि देवता पृथिवी से ऊपर की ओर अतिरोहण करता है। मैं आपको उस दुर्ग में ले जाता हूँ। उसमें आओ। उसमें प्रकर्ष रूपेण प्रवेश करो। वह पुर तुम्हें सुख (शर्म) और रक्षक कवच (वर्म) प्रदान करे। अभिप्राय यही है कि पुर में आश्रय प्राप्त करने वाले प्राणी शत्रुओं से अनाक्रान्त रहते हुए सदैव उन्नति तथा विजय के पथ पर अग्रसर होते हैं। अतएव सुख, समृद्धि एवं सुरक्षा की दृष्टि से पुरों का निर्माण होता था। ये पुर लोहनिर्मित एवं अजेय होते थे। सुरक्षा–संसाधनों तथा भोज्य–सामग्री से सम्पन्न होते थे –

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनी।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्।।[3]

अथर्ववेद में देवताओं और दस्युओं दोनों को ही पुर–वास्तु में निपुण माना गया है। इन्द्र स्वयं तो शत्रुओं द्वारा अभेद्य 'पर्वतीय दुर्ग' में निवास करता है, किन्तु वहीं से शत्रुओं के किलों को तोड़ता रहता है। उनमें प्रवेश करता है और उन्हें अपने संरक्षण में ले लेता है। शत्रुओं को वहाँ से हटाता है तथा स्वजनों को वहाँ आश्रय देता है। यथोक्तम् –

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि।

हन्ता दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः।।[4]

अथर्ववेद में विभिन्न प्रकार के पुरों यथा आयसी पुर, गिरि पुर, हिरण्ययी पुर, देवपुर, जीवपुर, अश्मन् पुर, ब्रह्म पुर, शारदी पुर, गोपुर आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन सभी का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत शोध–पत्र में करने का प्रयास किया गया है।

(क) हिरण्ययी पुर

अथर्ववेद में देवताओं और असुरों के स्वर्ण–निर्मित "हिरण्ययी–पुरों" का उल्लेख बहुलता से प्राप्त होता है। स्वर्ण–निर्मित पुरों से अभिप्राय यह है कि पुरों के प्राकार में लगे हुए मुख्य द्वार स्वर्णजटित होते थे। वस्तुतः सम्पूर्ण पुर का स्वर्ण–निर्मित होना तो असंगत प्रतीत होता है। ये स्वर्ण–पुर अभेद्य और अजेय होते थे। एक मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि देवताओं के तीन पुर थे। वे सभी प्रकार से आश्रय

लेने वालों की रक्षा करते थे। इन पुरों में रहने वाले व्यक्ति तेजस्वी होते थे। सुदृढ़ पुर का स्वामी होने के कारण वे सहजता से शत्रु का अभिभव करने में समर्थ होते थे। यथा –

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः।

तास्त्वं बिभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव।।[5]

अर्थात् देवताओं के स्वर्णमय पुर थे जो अमृतरूप थे। वे अभेद्य थे। शत्रुओं के द्वारा उन पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। इस स्वर्णमय पुर को प्रारम्भ में प्रथम देव ने बनाया था। सृष्टि के प्रारम्भ में स्वर्ण पुरों को स्थायित्व देने वाले अर्थात् स्वर्णपुरों की अवधारणा को प्रस्तुत करने वाले दिव्य व्यक्तित्वों को कोटिशः नमन करते हैं। यथा –

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे।

तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे।।[6]

ब्रह्म की यह स्वर्ण नगरी (पुर) अजेय है। इसमें ब्रह्म प्रविष्ट होकर रहता है। इस प्रकाशमान, पाप का विनाश करने वाली, यश से परिपूर्ण, कभी शत्रुओं द्वारा अभिभव न की जा सकने वाली हिरण्यमय पुरी में ब्रह्म प्रविष्ट होता है। यथा –

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।

पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्।।[7]

असुर भी पुर–निर्माण–कार्य में दक्ष थे। देवताओं के समान ही असुरों के भी हिरण्ययी पुरों का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। चन्द्रमा द्वारा मणि धारण कर असुरों और दानवों के स्वर्णमय पुरों को पराजित किया गया। यथा –

तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः।

सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।[8]

(ख) आयसीः पुरः

वैदिक वाङ्मय में 'आयसीः पुरः' अर्थात् लोह–निर्मित पुरों का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। पुरों अर्थात् नगरों या दुर्गों को लोहे आदि से इस प्रकार सुदृढ़ किया जाता था जिससे शत्रु उसे तोड़ न सकें। आयसी पुर का अर्थ यह भी किया जाता है कि पत्थरों से बने हुए इन दुर्गो के मुख्य द्वार लोहनिर्मित होते थे जिससे शत्रु उन्हें सरलता से भेदकर उनमें प्रवेश न कर सके। अथर्ववेद के 19वें काण्ड में ऋषि शौनक ने इसी प्रकार के अभेद्य पुर का उल्लेख करते हुए कहा है–

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुम्नोच्चमसो दृंहता तम्।।[9]

अर्थात् गोशाला बनाओ जो निश्चय ही तुम मनुष्यों के दुग्धसेवन तथा रक्षा का साधन है। बहुत मात्रा में तथा बड़े–बड़े कवच सीकर तैयार करो। शत्रुओं द्वारा अपराभवनीय लोहनिर्मित पुरों का निर्माण करो। तुम्हारे खानपान का पात्र न टपके, इसलिए उसे सुदृढ़ बनाओ। इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि शत्रुओं के आक्रमण से रक्षा हेतु विशाल लोहनिर्मित 'आयसी पुरों' का निर्माण किया जाता था। ये पुर खान–पान के साधनों से सम्पन्न होते थे तथा इनमें विपुल मात्रा में लोहे के अस्त्र–शस्त्र, विविध कवच आदि भी विद्यमान होते थे।

अथर्ववेद के समान ही ऋग्वेद में भी आयसी पुरों का उल्लेख मिलता है। एक मन्त्र में अग्नि देवता की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार किले में रहने वाले मनुष्यों की किला हर तरह से रक्षा करता है, बाहर के शत्रुओं का उन पर आक्रमण नहीं हो सकता, उसी प्रकार अग्नि अपने उपासकों की रक्षा करे –

अथा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये।

पूर्भवा शतभुजिः।।[10]

अर्थात् हे अग्ने! शत्रुओं से आक्रान्त न होते हुए हमारे समस्त मानवों की सुरक्षा के लिए आप सौ भुजाओं अर्थात् अनेकों दीवारों वाले अत्यन्त विस्तृत लोहे के प्राकार वाले 'आयसी–पुर' सदृश हो जाओ। वस्तुतः तत्कालीन आयसी पुर बहुत सुदृढ़, विशाल और सुरक्षा के साधनों से सम्पन्न होते थे। उनके आश्रित मनुष्य सर्वतो सुरक्षित होते थे।

ऋग्वैदिक ऋषि अपने इष्ट देव अग्नि से कामना करता है कि हे अग्नि! जब हम गो–घृत से निर्मित विभिन्न हवन–द्रव्यों से तुम्हारी परिचर्या करते हैं तब आप भी अपने अपरिमित तेज से तथा सैकड़ों लोहनिर्मित पुरों से हमारी सुरक्षा करो –

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीढाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि।।[11]

इस मन्त्र से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उस समय आयसी पुरों की बहुलता रही होगी। वे लोहनिर्मित पुर शत्रुओं के आक्रमणों से सर्वथा सुरक्षित होते थे। वैदिक काल में मानवों की सुरक्षा लोहे के सुदृढ़ पुरों से होती थी। ये आयसी पुर आश्रय में आने वालों को सुख और सुरक्षा प्रदान करते थे। स्तुतिकर्ता यजमान इन्हीं लोह–पुरों में आत्मरक्षा हेतु रहते थे। यथा –

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।

अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः।।[12]

ऋग्वेद में असुरों के भी लोह–निर्मित पुरों का उल्लेख मिलता है जिन्हें इन्द्र ने तोड़ दिया था –

"तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसार्तो।

प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नितारीत्।।"[13]

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में भी 'आयसी–पुर' का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा –

अथा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये।

पूर्भवा शतभुजिः।।[14]

अर्थात् हे अग्नि देव! शत्रुओं से आक्रान्त न होते हुए आप हमारे सब मानवों की सुरक्षा हेतु सौ भुजाओं अर्थात् दीवारों वाले विस्तृत लोहनिर्मित पुर सदृश हो जाओ।

(ग) जीवपुर

अथर्ववेद में प्राणियों से युक्त नगर के लिए 'जीवपुर' शब्द का प्रयोग किया गया है – 'जीवानां पुरम् इति'। डॉ. कपिल देव द्विवेदी के अनुसार जीवपुर शब्द से स्पष्ट है कि इनमें मनुष्य रहते थे और वहाँ उनकी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ भी उपलब्ध थीं। यथा –

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन्।

शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः।।[15]

अर्थात् यह प्राणी (जीवपुर) जीवितों के पुर को प्राप्त हो गया है तथा इसने स्मर्तव्य विषयों का स्मरण कर लिया है। इस जीवपुर में इसने प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थों और आवश्यकताओं को प्राप्त कर लिया है। अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार विभिन्न चिकित्सकों तथा औषधियों के सेवन द्वारा व्यक्ति प्राणघातक रोगों का भी अभिभव कर पुनः जीवन प्राप्त करता है उसी प्रकार पुर का आश्रय लेने वाले प्राणी भयंकर शत्रुओं का भी प्रतिकार करने में सक्षम होते हैं। वे मृत्यु को परास्त कर जीवपुर में प्रवेश करते हैं। अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र में औषधि से प्रार्थना की गई है –

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।

अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय।।[16]

अर्थात् हे दशवृक्ष औषधि! इस राक्षसरूप गठिया रोग से पीड़ित व्यक्ति को रोगमुक्त करो। इस रोग ने इस रोगी को शरीर के जोड़ों (पर्वों) में जकड़ा हुआ है। तू इसे जीवित लोगों के स्थान (जीवानां लोकम्) में जाने योग्य ऊपर उठा। अर्थात् स्वास्थ्य–लाभ प्रदान कर। इस मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि जो प्राणी

जीवपुर का आश्रय लेते हैं, वे पर्वतों (पर्ववान्–पर्वतः – निरूक्त 1.6)[17] में छिपे हुए राक्षस आदि से अभिभूत नहीं होते हैं। जीवपुर की सुदृढ़ सुरक्षा उन्हें राक्षस आदि आसुरी शक्तियों से दूर रखती है।

(घ) देवपुर

'जीवपुर' के समान ही अथर्ववेद में 'देवपुर' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। देवपुर से अभिप्राय द्विविध प्रकार से लिया जा सकता है – प्रथमतः, देवों द्वारा बनाये गये पुर। इससे ज्ञात होता है कि देवों में भी उच्च कोटि के शिल्पी होते थे। द्वितीयतः, देवों द्वारा अधिष्ठित पुर। इन देवपुरों में दैवीय शक्तियाँ निवास करती थीं! ये अविनाशी तथा अजेय थे। अथर्ववेद के मातृभूमि सूक्त में स्पष्टरूपेण कहा गया है कि इस मातृभूमि के पुर देवों द्वारा निर्मित हैं। अथवा देवों द्वारा बसाये गये हैं। इसके प्रत्येक क्षेत्र (प्रान्त) में मनुष्य अपने–अपने कार्य को भलीभाँति सम्पन्न करते हैं। यह भूमि विभिन्न भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। यह सभी दिशाओं में रमणीयता को प्राप्त करे। यथा –

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्याः विकुर्वते।

प्रजापतिः पृथिवी विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु।।[18]

ये देवपुर देवताओं द्वारा अधिष्ठित होने के कारण सामान्यतः अप्राप्य हैं। दीर्घायु की कामना से यज्ञोपवीत धारण करने वाला व्यक्ति ही देवों के पुर को प्राप्त करता है। यथा –

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात्त्वा पात्वर्जुनम्।

भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद्देवपुरा अयम्।।[19]

यज्ञोपवीत के तिहरे धागे होते हैं। इनमें प्रथम सुवर्ण रूप धागा द्युलोक से रक्षा करता है। द्वितीय रजत रूप धागा अन्तरिक्ष लोक से रक्षा करता है तथा तृतीय अयस्क रूप धागा पृथिवीलोक से रक्षा करता है। तीनों लोकों से रक्षित यज्ञोपवीत धारण करने वाला व्यक्ति ही देवों के पुर को प्राप्त करता है।

(ङ) ब्रह्मपुर (ब्रह्मणः पुरम्)

ऊर्ध्वो नु सृष्टास्तिर्यङ् नु सृष्टा सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।।[20]

अर्थात् जिस ब्रह्म को पुरुष कहा जाता है, उस ब्रह्म के पुर को जो जानता है, वही ऊर्ध्व और तिर्यक् भागों का सृष्टा है, वही पुरुष समस्त दिशाओं में व्याप्त होता है। इस प्रकार ब्रह्म से अभिप्राय है – 'पुरुष'। "पुरि शेते इति पुरुषः" इस निरुक्त वचन के अनुसार जो शरीर रूपी पुर में निवास करता है वह प्राणतत्त्व पुरुष कहलाता है। यह ब्रह्म का वाचक है। यह शरीर ब्रह्म की नगरी (पुर) है, देवों की नगरी है। इसे अयोध्या भी कहते हैं। यथा –

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्याः।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।[21]

यह शरीर रूपी अयोध्या देवों की नगरी (पुर) है। यह एक दुर्ग सदृश है। इसमें आठ चक्र हैं तथा नौ द्वार हैं – दो आँखें, दो कर्ण, दो नासिकारन्ध्र, एक मुख, एक मलेन्द्रिय तथा एक मूत्रेन्द्रिय। इसमें एक तेजोमय कोश है जो अपरिमित तेज से व्याप्त है यह तेजोमय कोश ही ब्रह्म है जो इस शरीर रूपी अयोध्या पुरी में विराजमान है। यही स्वर्ग कहलाता है।

ब्रह्म की वह पुरी अमृत अर्थात् अमरता से आवृत्त है। जो प्राणी उस ब्रह्मपुर को जान लेता है उसे ब्रह्म एवं मन्त्र चक्षु, प्राण एवं सन्तान प्रदान करते हैं। अर्थात् ब्रह्मपुर का ज्ञाता प्राणी स्वर्ग का द्रष्टा, प्राणतत्त्व से युक्त तथा उत्तम वीर प्रजा से युक्त होता है –

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजा ददुः।।[22]

जो ब्रह्म की पुरी अर्थात् ब्रह्म के निवास स्थान को जानता है। उसमें शयन करने के कारण ही ब्रह्म पुरुष कहलाता है, इस तथ्य का भी ज्ञाता है, वृद्धावस्था तक नेत्र एवं प्राण उस व्यक्ति का त्याग नहीं करते। अर्थात् ब्रह्म तत्त्व का ज्ञाता वह प्राणी आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए नियत काल से पूर्व अपनी शारीरिक शक्तियों का अपव्यय नहीं करता है –

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।।[23]

(च) गिरि दुर्ग/पर्वतीय पुर

वैदिक वाङ्मय में पर्वतीय पुर अथवा गिरि दुर्ग को कतिपय स्थलों पर दर्शाया गया है। वस्तुतः विभिन्न दुर्गों में पर्वतीय पुर को सुरक्षा की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट माना गया है। विभिन्न दुर्गों की अपेक्षा पर्वतीय पुर (गिरि दुर्ग) की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए शुक्राचार्य कहते हैं कि –

पारिखादैरिणं श्रेष्ठं पारिधं तु ततो वनम्।

ततो धन्वजलं तस्माद् गिरिदुर्गं ततः स्मृतम्।।[24]

अर्थात् पारिख दुर्ग से श्रेष्ठ ऐरिण दुर्ग, उससे श्रेष्ठ पारिध दुर्ग, उससे भी श्रेष्ठ वन दुर्ग, उससे श्रेष्ठ धन्व दुर्ग, उससे श्रेष्ठ जल दुर्ग और सर्वश्रेष्ठ गिरि दुर्ग को माना जाता है। शुक्राचार्य गिरि दुर्ग का लक्षण निरूपित करते हुए कहते हैं कि गिरि दुर्ग वह है जो एकान्त में किसी पहाड़ी के ऊपर बना हो एवं उसके ऊपर जलाशय का भी प्रबन्ध हो। यथोक्तम् –

सुवारिपृष्ठोच्चधरं विविक्ते गिरिदुर्गमम्।।[25]

अथर्ववेद और ऋग्वेद में भी एवंविध 'पहाड़ी दुर्ग' का वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ इन्द्र के लिए 'अद्रिवः' पद का प्रयोग किया गया है अर्थात् सुरक्षा की दृष्टि से इन्द्र को पहाड़ी दुर्गों में निवास करने वाला कहा गया है। पहाड़ी दुर्गों में निवास करने वाले सामर्थ्यवान् इन्द्र से दूरस्थ स्तोता भी अपनी सहायता हेतु उनका आह्वान करते हैं –

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।

उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि।।[26]

अर्थात् हे पहाड़ी दुर्ग में निवास करने वाले इन्द्र! जो तुम्हारा स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष लोक है, वहाँ से इस पृथिवी लोक में हमारे पास आओ। हे सामर्थ्यवान् इन्द्र! पास से भी और दूर से भी हमारे समीप आओ। अभिप्राय यही है कि स्वयं सुरक्षित रहते हुए आप हम सब स्तोतागणों को भी सब प्रकार से सुरक्षित रखो।

सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त सुदृढ़ भी पहाड़ी पुरों (अद्रिभित्) का नाश करने में समर्थ बृहस्पति देव हैं। वे अंगिरस के पुत्र, प्रथम उत्पन्न, अत्यन्त सरल, हविष्मान् तथा शत्रुओं के गिरि दुर्गों का भी आसानी से भेदन करने वाले हैं –

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।

द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति।।[27]

महर्षि मनु गिरि दुर्ग की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि राजा को धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, जल–दुर्ग, वृक्ष–दुर्ग, नृदुर्ग अथवा गिरि–दुर्ग का आश्रय लेकर नगर में निवास करना चाहिए। उनके अनुसार इन समस्त दुर्गों में गिरि–दुर्ग को विशिष्ट माना गया है। यथा –

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।

नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत् पुरम्।।

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्।

एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते।।[28]

(छ) शारदी पुर

अथर्ववेद में 'शारदी पुर' का उल्लेख प्राप्त होता है। 'शारदी पुर' से अभिप्राय शरदकालीन पुरों से हैं। शरद् काल में निवास करने योग्य जो पुर बनाये जाते थे वे शारदी पुर कहलाते थे। वस्तुतः इन शारदी पुरों का उपयोग शरद् ऋतु में आर्यों के आक्रमणों अथवा बढ़ी हुई नदियों के आप्लावन से बचने हेतु किया

जाता था। ये शारदी पुर प्रायः असुरों द्वारा बनाये जाते थे जिनको इन्द्र द्वारा अपने पराक्रम से विदीर्ण करने का उल्लेख ऋग्वेद ओर अथर्ववेद में समान रूप से उपलब्ध होता है। सर्वप्रथम अथर्ववेद में कहा गया है –

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।

शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयुज्युं शवसस्पते।

महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः।।[29]

हे इन्द्र! जब तुमने शत्रु के शरद् में निवास करने योग्य शारदी पुरों को नष्ट किया, विजय प्राप्त करते हुए शत्रुओं का संहार किया, तब पुर में निवास करने वाली प्रजा ने तेरे इस पराक्रम को जाना। हे बलवान् इन्द्र! तुमने उस यज्ञ न करने वाले मनुष्य को दण्डित किया तथा उससे इस विशाल पृथिवी और जलों को मुक्त करवाया। हर्षपूर्वक इन जलों को अपने अधीन किया। वस्तुतः असुर जल और पृथिवी को घेरकर अपने अधीन रखते थे। ये यज्ञादि विधान भी सम्पन्न नहीं करते थे। शारदी पुरों में निवास करने वाले ऐसे असुरों का घेरा तोड़कर इन्द्र ने पृथिवी और जलप्रवाह को मुक्त करवाया।

यही मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 131वें सूक्त का चतुर्थ मन्त्र है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में अन्य कई स्थलों पर भी इन्द्र द्वारा शत्रुओं के शरद्कालीन पुरों को नष्ट करने का उल्लेख है। शत्रुओं के विविध पुर हैं। उनमें दुःखकारिणी वाणी का प्रयोग करने वाले शत्रुओं के सैनिक निवास करते हैं। ये असुर पृथिवी और जल को घेरकर अपने अधीन रखते थे। अनिन्दनीय, पराक्रमी इन्द्र देव ने शारीरिक और मानसिक हिंसा करने वाले शत्रु–सैनिकों से युक्त सात शारदीय पुरों को नष्ट कर दिया तथा जलों को पृथ्वी पर प्रवाहित किया। यथा –

दनो विशं इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्मा शारदीर्दर्त्।

ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकृत्साय रन्धीः।।[30]

ऐश्वर्यप्रदाता इन्द्र द्वारा संरक्षित हम अपूर्व धन के स्वामी हों तथा उसका उपभोग भी करें। मनुष्यों और असुरों दोनों के द्वारा पुरों का निर्माण किया गया है। इन पुरों में निवास करने वाले मनुष्य यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों से देवों की स्तुति करते हैं। प्रसन्न और सुरक्षित रहते हैं। किन्तु हिंसक प्रवृत्ति वाली शत्रु की प्रजा, जो सात शारदी पुरों के आश्रय में रहती है, का समूल नाश करता है। उन शारदी पुरें को अपने वज्र से विदारित करता है। यथा –

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एमा यज्ञैः।

सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन् दासीः पुरुकृत्साय शिक्षन्।।[31]

वस्तुतः असुर जल और पृथिवी को घेरकर अपने अधीन रखते हैं। पराक्रमी इन्द्र ने शारदीपुरों में निवास करने वाले इन असुरों का घेरा तोड़कर पृथिवी और जल को मुक्त कराया। इन्द्र यज्ञ न करने वाले प्राणियों को दण्ड देता है –

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।

शासस्तमिद्र मर्त्यमयुज्युं शवस्पते।

महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः।।[32]

(ज) त्रिपुर

त्रिपुर से अभिप्राय ऐसे पुर से है जिसमें सम्भवतः तिहरी सुरक्षा व्यवस्था होती थी। इसमें सुरक्षा हेतु तीन स्तरों पर प्राचीरें हुआ करती थीं। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टतः 'त्रिपुरम्' पद का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता तथा ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसका प्रयोग दृष्टिगत होता है। अथर्ववेद में 'त्रिपुर' शब्द का स्पष्ट प्रयोग तो दृष्टिगत नहीं होता किन्तु एवंविध कलेवर से युक्त कतिपय मन्त्र उपलब्ध होते हैं जो तिहरी सुरक्षा–व्यवस्था (त्रिपुर) का प्रतिपादन करते हैं। यथा –

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः।

तास्त्वं बिभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव।।[33]

अर्थात् ये तीन देवपुर (त्रिपुर) हैं जो सब प्रकार से लोगों की रक्षा करते हैं। इनको धारण करने वाला अर्थात् इस त्रिपुर में निवास करने वाला व्यक्ति तेजस्वी होकर शत्रुओं का अभिभव करता है। इसी प्रकार के अभिप्राय को द्योतित करते हुए अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया हैं –

दिवस्त्वा पावु हरितं मध्यात्त्वा पात्वर्जुनम्।

भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद्देवपुरा अयम्।।[34]

अर्थात् स्वर्ण (हरित) द्युलोक से रक्षा करे, रजत (अर्जुन) मध्यवर्ती अन्तरिक्ष लोक से रक्षा करे तथा अयस् भूलोक से रक्षा करे। ये त्रिविध देवपुर (त्रिपुर) प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः इस मन्त्र में त्रिवृत् यज्ञोपवीत का वर्णन है। यज्ञोपवीत में तीन सूत्र (धागे) होते हैं और प्रत्येक सूत्र में पुनः तीन–तीन धागे अर्थात् कुल नौ धागे होते हैं। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र स्वर्ण, रजत तथा अयस् के हैं। इन तीन धातुओं से निर्मित यज्ञोपवीत को धारण करने से शरीर में धीमा–सा विद्युत्–संचार प्रारम्भ होता है जिससे शरीर को स्वास्थ्य, बल और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त करता है। उसी प्रकार से जो 'तिस्रः देवपुराः' (त्रिपुर) अर्थात् तिहरी सुरक्षा वाले देवपुरों में निवास करता है, वह अजेय होता है।

निष्कर्षतः, वैदिक वाङ्मय में पुर (दुर्ग) के उपर्युक्त भेद दृष्टिगत होते हैं किन्तु परवर्ती वाङ्मय एवं वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में पुर के कतिपय अन्य भेद भी प्रस्तुत किये गये हैं। आचार्य कौटिल्य ने पुर के चतुर्विध भेद माने हैं – औदक दुर्ग, गिरि दुर्ग, धान्वन् दुर्ग तथा वन दुर्ग। मत्स्य पुराण में छह प्रकार के दुर्गों का वर्णन प्राप्त होता है – धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, नृ–दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, अम्बु दुर्ग तथा गिरि दुर्ग। आचार्य मय ने सात प्रकार के दुर्गों – गिरि दुर्ग, वन दुर्ग, जल दुर्ग, पङ्क दुर्ग, इरिण दुर्ग, दैवत दुर्ग तथा मिश्र दुर्ग – का उल्लेख किया है। विश्वकर्मावास्तुप्रकाश ग्रन्थ में आचार्य विश्वकर्मा ने द्वादश दुर्गों का विशद् विवेचन किया है – गिरि दुर्ग, वन दुर्ग, जल दुर्ग, इरिण दुर्ग, दैवत दुर्ग, एकमुख दुर्ग, द्विमुख दुर्ग, चतुर्मुख दुर्ग, कूर्म दुर्ग, पारावत दुर्ग, प्रभु दुर्ग तथा युद्ध दुर्ग।

संदर्भ–सूची –

1. वैदिक कोशः सूर्यकान्त, पृष्ठ–294, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2020
2. अथर्ववेद – 19.19.1
3. वही – 19.58.4 तथा ऋग्वेद – 10.101.8
4. वही – 20.64.3
5. वही – 5.28.10
6. वही – 5.28.11
7. वही – 10.2.33
8. वही – 10.6.10
9. वही – 19.58.4 तथा ऋग्वेद – 10.101.8
10. ऋग्वेद – 7.15.14
11. वही – 7.3.7
12. वही – 1.58.8
13. वही – 2.20.8
14. वही – 7.15.14
15. अथर्ववेद – 2.9.3
16. वही – 2.9.1
17. निरुक्तम् – 1.6

18. अथर्ववेद – 12.1.43
19. वही – 5.28.9
20. वही – 10.2.28
21. वही – 10.2.31
22. वही – 10.2.29
23. वही – 10.2.30
24. शुक्रनीति – 4.6.6
25. वही – 4.6.4
26. अथर्ववेद – 20.20.4 तथा ऋग्वेद – 3.37.11
27. वही – 20.90.1 तथा वही – 6.73.1
28. मनुस्मृति – 7.70–71
29. अथर्ववेद – 20.75.2
30. ऋग्वेद – 1.174.2
31. वही – 6.20.10
32. वही – 1.131.4
33. अथर्ववेद – 5.28.10
34. वही – 5.28.9